भारत की विदेश नीति और विचारधारा

डॉ0 रवि प्रकाश सिंह
अतिथि प्रवक्ता, राजनीति विज्ञान
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ,वाराणसी

भारत की स्वाधीनता के पश्चात विदेश नीति की वैचारिकी पर विमर्श देश के प्रथम प्रधानमंत्री पं0 जवाहर लाल नेहरू की राष्ट्र के प्रति चिंतन दृष्टि से रेखित करना उचित होगा। कारण पं0 नेहरू ने स्वाधीनता आंदोलन काल में हीं देश के विदेश नीति की वैचारिकी को प्रस्तावित किया। यह सही है कि विश्व में 'असंलग्नता नीति' का प्रभाव अवश्य दिखा, किंतु विचारधारा के रूप में 'गुटनिरपेक्ष या असंलग्नता' देश में विदेश नीति के भावी पक्षकारों में फेर–बदल का उभार लेता रहा। पं0 नेहरू पर पूरब–पश्चिम का मिश्रित लेप होने के कारण उनकी मान्यता थी, ''राष्ट्रभक्ति अधिक समय के लिए टिकाऊ नहीं होती या उसी प्रकार संकीर्ण राष्ट्रीयता लोगों को बांधे नहीं रख सकती।'' इससे हटकर व्यापक और योग्य तथा मानववादी दृष्टिकोण की जरूरत होगी जिसमें इंडोनेशिया या इजराईल के पक्ष को दृष्टिगत रखते हुए भारत के स्वाधीनता की लड़ाई लड़ सके।[1] फलतः विदेश नीति में उनकी प्रस्तावित विचारधारा का मुख्य तत्व था – 'विश्व के नागरिक' आदर्श तत्व 'एक विश्व' तथा तरीका और सर्वत्र मानव स्वतंत्रता के लिए संघर्ष। संभव है यह विचार तत्व 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का अद्यतन वैचारिकी विन्यास हो। प्रजातंत्र के प्रति रंगीन विचार और प्रतिदर्श के निर्णय में उनकी विचारधारा में विश्व की आकांक्षा के अनुरूप परिवर्तन हुआ। इतिहास की एक लम्बी श्रृंखला में विदेश नीति और विचारधारा की यथार्थता के स्पष्टीकरण के लिए विचार या विचारधारा का महत्व है। विचारधारा से अभिप्राय है विचार या विचारधारा किसी देश की पर्यावरण पद्धति है। यह स्वयं में पूर्ण होने की धारणा है, न्यायसंगत ठहराने की धारणा है। इससे राजनीतिक प्रारूप का निर्माण होता है, यथा – लोकतंत्र, राष्ट्रवाद, फासीवाद, साम्यवाद, पूंजीवाद आदि। भारत की विदेश नीति के आधार में लोकतंत्र और राष्ट्रवाद सैद्धांतिक पहलू है तथा साम्यवाद देशों में पूंजीवाद का विरोध विचार या विचारधारा का पहलू है। राजनीतिक दल जिन्हें देश में सरकार बनाने का अवसर मिलता है वे अपने अनुरूप विदेश नीति का ढंग गढ़ते हैं। यदि देश में तानाशाह या फांसीवाद का शासन होता तो विदेश नीति का आधार गृहनीति का विस्तार बनता। यही कारण है कि विचारधारा के कारण नव राजनीतिक सिद्धांत बनते हैं। परम्परावादी शासन में जन भागीदारी नहीं थी शासन के लिए शासक और शासित की नैतिक वचनबद्धता हीं प्रतिबद्ध विचारधारा थी।[2] इस कारण 20वीं सदी में प्रत्यक्षवादी (Positivists), नव प्रत्यक्षवादी (Neo Positivists) और तार्किक प्रत्यक्षवादी (Logical Positivists) का उदय हुआ। इस उदय का राजनीति में मानवता का जुड़ाव न होने से राजनीतिक सिद्धांत को मृत घोषित करके हुआ। यह ऐसा दशक भी था जिसमें विचारधारा को अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करना पड़ा। किन्तु व्यवहारवादी आन्दोलन ने इसे मृत घोषित किया।

भारत की विदेश नीति के संदर्भ में विचारधारा से अभिप्राय सत्तारुढ़ राजनीतिक दल या साझा सरकार के राजनीतिक दलों के विचारधारा से है। विचारधारा को आंतरिक टकराव या कार्यक्रमों के टकराव और दोस्ती–संबंधों के कारण और मानक बनते हैं। स्वभाविक है, विदेश नीति की ऐसी स्थिति में विचारधारा का विचलन होता है, विचारधारा कुंद होती है तथा कमजोर हो जाती है। जबकि 1960–70 के दशक में घटित अरब–इजराईल या वियतनाम युद्ध की घटनाओं का परीक्षण करें तो स्पष्ट है कि सीमा संरक्षा और राष्ट्रवाद की अपाराजेय सैद्धान्तिकी ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।[3] कुछ हद तक घातक हथियार के चरित्र एवं प्रोत्साहन ने भी राष्ट्रवादी विचारधारा को उद्वेलित किया तथा 'महाशक्तियों' कि पक्ष–विपक्ष के प्रति तीव्रता आरेख ने विदेश नीति की वैचारिकी में बदल रहे चल सोपान की भूमिका अदा की। हर्ज के इस दृष्टिकोण का उल्लेख अन्तर्राष्ट्रीय पद्धति में राष्ट्र–राज्य को मूल–इकाई संरचना में माने जाने की असुविधा नहीं होनी चाहिये।[4] किन्तु हर्ज ने आधुनिक राज्य पद्धति में तेजी से परिवर्तन के कारण यह माना है कि राज्य की सीमा और संप्रभुता दोनों संक्रमण ग्रस्त हैं और अब पृष्ठोन्मुख हैं। संभव है यह परिवर्तन परमाणु शक्ति के विकास के कारण हो। इस वैचारिकी को प्रभावी और प्रभावित

देशों का न तो समन्वय कहना उचित होगा और न हीं विचारधारा के टकराव में प्रभावी या प्रभावित देशों में से किसी एक का कमजोर पड़ जाना। ये दोनो प्रतिदर्श पुरातन विचारधारा की अवधारणा का प्रतिलोम भी है। इसका एक प्रमुख कारण संशोधनों एवं संचार का विकास भी है। सुरक्षा की दृष्टि से राष्ट्र–राज्य की तार्किक अवधारणा लम्बे समय तक अधिक कामयाब नहीं रह सकी।[5]

भारत की गुटनिरपेक्ष विदेश नीति संबंधी विचारधारा की एक मजबूत और प्रभावी निर्गुट नीति साबित हुई। इस पद्धति की वैचारिकी के अभाव में भारत की विदेश नीति का न तो आकलन हो सकता है और न हीं परीक्षण। दूसरे शब्दों में जनता शासन के मोरारजी देसाई के प्रधानमंत्री काल में समालोचक मानते थे कि भारत की विदेश नीति अमेरिका परस्त होगी। किंतु उन्होंने 25 सदस्य राष्ट्रों के सदस्य ब्यूरों को संबोधित करते हुए स्पष्ट किया कि गुटनिरपेक्षता अन्तर्राष्ट्रीय जीवन की मुख्यधारा बन गई है। श्रीमती इन्दिरा गांधी के नेतृत्व के दो काल खण्ड (1966 से मार्च 1977 तथा जनवरी 1980 से 1985 तक) असंलग्नता की नीति सदैव अपनी कसौटी पर खरी उतरी। कारण 1965 और 1971 के भारत–पाक युद्ध में पाक के सीटो (SEATO) तथा सेंटो (SENTO) का सदस्य होने के बाद भी उसे अमेरिका से सहायता नहीं मिल सकी। विचारधारा के महत्वपूर्ण पक्ष पर विचार करते समय भारत और उसके पास–पड़ोस की भू–राजनीतिक संदर्भों की ऐतिहासिकता का अधिक महत्व है। भू संस्कृति, भौगोलिक समाकृति और सांस्कृतिक समप्रकृति से देशों की विचारधारा अच्छादित होती है। शक्ति संतुलन तथा निहितार्थ कारणों से विचारधारा के टकराव के कारण भारत–चीन, भारत–पाक तथा अन्य पड़ोसी देशों के साथ 'गुटनिरपेक्ष नीति' प्रभावित अवश्य हुई। दूसरे शब्दों में भारत की गुटनिरपेक्ष नीति अपने पड़ोसी देशों को प्रभावित न कर सकी। इसका कारण पृथक है। उदाहरण के लिए 1962 में चीन का भारत पर आक्रमण नीति का आधार मैकमोहन रेखा को नकारना कारण था। दोनों में विचारधारा का संगत बंधन 'पंचशील' दोनों के मध्य 4200 किलोमीटर लम्बी नियंत्रण रेखा के विवाद (वर्ट्रण्ड ज्युनिरल ने विवाद को ही राजनीति कहा है)[6] के साथ ताल–मेल न बन पाना विचारधारा की टकराव का मुद्दा था। इसका एक पक्ष यह भी है कि दोनों देशों की राजनीतिक संप्रकृति एक नहीं थी। इसी प्रकार पाकिस्तान अपने निर्माण काल से हीं भारत को स्थायी दुश्मन करार देकर युद्ध नीति का सदैव अपने अस्तित्व के लिए आधार मान रखा है तथा महाद्वीप की रणनीति में भू–राजनीतिक संरचना आधार नहीं बन सकती। जाहिर है विदेश नीति के सिद्धांत से अलग राजनीतिक विचारधारा एक अलग सिद्धांत होता है। (वर्ग संघर्ष आधारित विकास के विचारधारा का प्रशिक्षण चीन ने सोवियत संघ से 1950 में लिया था।)[7] इसी तरह सुरक्षा परिषद और विटो राजनय भी एक चुनौती है। एक वास्तविकता यह भी है कि महासभा प्रायः वही प्रस्ताव पास करती है जिसे बड़ी शक्तियां समर्थन देती हैं। इसके चलते 1977 के बाद से तृतीय विश्व की संरचना तो हुई किन्तु वैचारिकी टकराव इनमें समस्या है। (पामर तथा पर्किंस का मानना है कि सुरक्षा परिषद संयुक्त राष्ट्र की कुंजी है।)[8]

1980 के दशक के बाद से गुटनिरपेक्ष आंदोलन[9] की विचारधारा का मार्गरोधी परिदृश्य प्रकट होने लगा। कारण सीमा विवाद के जटिल पहलुओं के परिदृश्य पर विराम देते हुए वैश्वीकरण के प्रस्ताव, बाजारवादी संस्कृति अर्थात् आर्थिक विकास की ओर आंदोलन मुखाकृत हुआ। यह इसलिए नहीं की इन विषयों को दुनिया में महत्व मिलना प्रारम्भ हुआ अपितु ऐसा होने की वैश्विक दबाव की विवशता थी। फलतः रणनीतिक सुरक्षा और विकासात्मक संबंध को गुटनिरपेक्ष नीति में आधारभूत किया गया। (भारत के लिए सुरक्षा की जटिलता 5 मार्च 1970 के परमाणु अस्त्र अप्रसार संधि की शर्तों के कारण अधिक जटिल हुई। वस्तुतः यह संधि परमाणु हथियार सम्पन्न और आयुध विहीन राष्ट्रों के लिए एक शर्त थी। इसे अमेरिका द्वारा संयुक्त राष्ट्र महासभा के समक्ष प्रस्तुत किया गया। 13 मार्च 1968 को इस पर महासभा में वोट डाले गये। जुलाई 1968 में इस संधि पर लंदन, मास्को तथा वाशिंगटन में हस्ताक्षर किये गये तथा संधि 5 मार्च 1970 को क्रियान्वित हुई। यह उल्लेखनीय है कि श्रीमती इंदिरा गांधी ने 19 मई 1974 को पोखरण में परमाणु परीक्षण करके अस्त्रों की क्षमता हासिल कर ली थी तथा इस कारण भारत पर प्रगति को धीमा करने का दबाव भी पड़ रहा था। इसकी एक अन्य कठिनाई भारत को रक्षा संसाधनों के लिए दूसरे देशों पर निर्भर रहना भी था।) जबकि इंदिरा गांधी ने 19 मई 1974 को पोखरण में परमाणु परीक्षण करके अस्त्रों की क्षमता हासिल कर ली थी किन्तु समीक्षक इसे गुटनिरपेक्ष के विरूद्ध

मानते थे तथा इस कारण भारत पर प्रगति को धीमा करने का दबाव भी पड़ रहा था। इसकी एक अन्य कठिनाई भारत को रक्षा संसाधनों के लिए दूसरे देशों पर निर्भर रहना पड़ता था तथा महाशक्तियाँ संसाधनों को बन्द करने की धमकी देते रहते थे। (इसका अभिप्राय यह नहीं कि भारत सुरक्षात्मक रणनीति और परमाणु खतरों के प्रति सचेत नहीं था। चीन और पाकिस्तान ने भारत के साथ सामरिक और राजनीतिक युद्ध को जारी रखते हुए भारत को सदैव चुनौती दिया है। किंतु भारत में 24 मई 1996 से छः वर्षों तक गैर–कांग्रेसी सरकार का नेतृत्व अटल बिहारी वाजपेयी ने किया। एक अलग राजनीतिक विचारधारा से जुड़े होने के कारण वाजपेयी ने सुरक्षा के प्रत्येक पहलू का सूत्रधार बनकर सुरक्षा रणनीति की रचना की तथा 11 और 13 मई 1998 को एक के बाद एक पोखरण में क्रमशः 3 और 2 परमाणु परीक्षण करके अपने सुरक्षा नीतियों का गति प्रदान की। इस परीक्षण से भारत के दीर्घकालिक सामरिक हितों की पुष्टि हुई। हालाकि शक्तिशाली देशों ने भारत के साथ नाराजगी जतायी किंतु स्वदेशी तकनीकी के कारण वाजपेयी सरकार ने दुनिया के समक्ष अपना पक्ष रखते हुए कहा कि चीन की सैन्य संगठन सुरक्षा रणनीति से खतरे के कारण भारत को परमाणु अस्त्रीकरण के लिए बाध्य होना पड़ा है।)

विदेश नीति का एक अन्य पहलू भू–भौतिक राजनीति का है। भू–भौतिकी राजनीति उदाहरण के लिए उत्तर के शीर्ष में हिमालय पर्वत मालाओं की विस्तृत अवस्थिति के प्रति स्वहित के कारण चीन ने सदैव गहरी रुचि रखी है। पंचशील समझौते के बाद भी 1959 में उसके रुख का पता लगा जिसकी जानकारी 1959 के संसद के वार्षिक अधिवेशन में पं0 नेहरू ने दी।[11] तिब्बत के प्रश्न पर 1950 से भारत के प्रति चीन की गलत फहमियां रही हैं जो आज भी जारी है। इस मतभेद को साम्यवाद और गैर साम्यवाद की वैचारिकी के कारण मतैक्य का अभाव माना जाता रहा जिससे भारत चीन के रवैये के प्रति भिज्ञ था। ब्रिटिश जमाने से चले आ रहे अधिकार को भी भारत ने पंचशील के आमुख पांच सिद्धांतों के कारण छोड़ा। (भारत–चीन के मध्य पंचशील के पांच सिद्धांतों का समझौता 15 मई 1954 को हुआ। ये सिद्धांत हैं 1. प्रत्येक की क्षेत्रीय अखंडता और सार्वभौम सत्ता के प्रति पारस्परिक सम्मान। 2. एक–दूसरे पर आक्रमण न करना। 3. समानता और पारस्परिक लाभ और 4. शांतिपूर्ण संबंध और 5. सह अस्तित्व की वचन बद्धता।) इसे स्पष्ट करते हुए पं0 नेहरू ने कहा कि दुनिया में बहुत सी घटनाएं हुई हैं जिन्हें वे पसंद नहीं करते और जिसे वे पसंद करते हैं वे कठिन हैं। उन्होंने मना किया कि वे नापसंद की चीज पर स्पेनिश योद्धा डान क्विकजोट की तरह हाथ में बल्लम लेकर न दौड़ें।[12] किन्तु भारत ने कुछ समय छोड़कर चीन की राजनीतिक यात्रायें तथा हर स्तर पर वार्तायें की है। किंतु, भू–सुरक्षा की जटिलतायें बढ़ी हैं। 3 अप्रैल 1960 को दलाई लामा के तिब्बत से भागकर भारत में शरण लेने के पश्चात दोनों देशों के मध्य ऐतिहासिक साक्ष्यों और नक्शों के साक्ष्य को चीन ने इनकार करना प्रारम्भ किया। (उल्लेखनीय है कि भारतीय प्रतिनिधि मंडल ने स्वपक्ष में कुल 630 प्रमाण प्रस्तुत किये। इनमें 49 कानूनी और 516 पारस्परिक तथा प्रशासनिक संबंधों पर आधारित थे। चीन ने स्वपक्ष में 245 साक्ष्य प्रस्तुत किय, जिनमें 47 कानूनी और 198 पारस्परिक एवं प्रशासनिक थे। इसका अभिप्राय यह रहा है कि बहुतायत क्षेत्र को भारत का 12000 वर्ग मील क्षेत्र है उसे चीन ने गैर–कानूनी ढंग से हड़प रखा है। उसने 8 दिसम्बर 1984 को चीन ने भारत संघ में पूर्ण स्वायत्त अरुणाचल प्रदेश राज्य के निर्माण की न केवल आलोचना की अपितु आजतक भी अरुणाचल पर दावा करता रहता है।) अब जटिलता यह है कि चीन द्वारा प्रकाशित नक्शे को स्वपक्ष में भारत भू को दिखाना जारी रखा है। प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी की ब्रिक्स सम्मेलन के दौरान सीमा विवाद के प्रति चीन ने सहमति तो दिखायी किंतु भारत के अरूणाचल प्रदेश, नेफा क्षेत्र भू–भाग को अपने सैन्य नक्शे में प्रकाशित करके पर्चे बांटें।चीन संप्रति 1988 से साम्यवादी विचारधारा के कड़े मानक को त्याग चुका है; किन्तु, भारत में माओवाद और उसमें हिंसक तरीके का फैलाव तथा इस तरह से पाकिस्तान की युद्ध राजनीति, आतंकवाद का भारत में फैलाव यह प्रमाणित करता है कि दो पड़ोसी देश भारत की वैचारिक विरासत को ध्वस्त करने में लगे हैं। यह तथ्य उल्लेखनीय है कि सरकार चाहे जिस राजनीतिक विचारधारा की रही हो भारत ने सदैव शांति मार्ग परिचालित विचारधारा का अवलम्बन किया है। फिर भी, विदेश नीति और अन्तर्राष्ट्रीय संबंध निर्धारण में शासनिक प्रक्रिया, भौगोलिक शांति एवं संतुलन की रीति–नीति का प्रकटीकरण सदैव भारतीय नेतृत्व के विचारधारा से सुनिश्चित होता रहा है। भारत ने विदेशी मामलों में आक्रमक, प्रसारवादी और अन्य देशों के संप्रभुता के

तौर–तरीके पर अपना मत प्रकट किया है। यहां तक भारत और चीन ने पंद्रह वर्षों (सन् 1976 से सन् 1979) तक एक दूसरे के साथ दूतावास तक बंद रखा। यह पुनः 1979 में अटल बिहारी वाजपेयी के विदेश मंत्री होने पर प्रारम्भ हुआ। इस संबंध में वाजपेयी की पहल संवाद करने की थी। पास पड़ोस के प्रभाव को चीन, अपने लिए तनाव मानता था यथा 1971 में बंगलादेश का स्वतंत्र राष्ट्र होना तथा 1975 में भारत के साथ सिक्किम का विलय को उसने भारत के साथ तानातानी का कारण माना। भारत विदेश नीति की गुटनिरपेक्ष साख को अच्छा मित्र बनाकर जारी रखे हुआ है, किन्तु भारत की कठिनाई है कि पड़ोस को अच्छा मित्र कैसे बनाये। पड़ोस को अच्छा मित्र बनाने की भारत ने कीमत भी चुकायी है, किन्तु मित्र अच्छा मिला नहीं। अब 15 फरवरी 2007 से इस बात पर निर्भर करता है कि दोनो देशों में परस्पर समझ, सांस्कृति संबंध एवं सीमा विवाद के समाधान की रणनीतिक पहल से किस प्रकार की वैचारिकी निर्मित होगी? विचारधारा की क्या दशा होगी? इसे भविष्य तय करेगा।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. Autobiography, pp.414, 419.
2. R.C. Gupta : Great Political Thinkers East & West. 2005,Agra, p.142.
3. James N. Rosenau, Rosenau's volume (ed.) International Politics & Foreign Policy (New York, 1969) pp.76-89.
4. For detail see, John H. Hertz, The Rise and Demise of The Teritoried State,
5. John H. Hertz : The Teritirial State, Revisited Reflection on the Future of the Nation State, Polity (Amhurst), 1 (1969) pp.12-34.
6. Jourenel; Bertrand de, theory of Politics, 1963, Cambridge, p.187.
7. D.S. Rajan on China : Domestic Politics and Foreign Policy in ORF Discources, p.3.
8. Palmer and Parkeins: International Relation (1957) Bostan p.538.
9. The Competition Master (May 1978) p. 675.
10. जे0एन0 दीक्षित, भारतीय विदेश नीति (1999) प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 377.
11. राव चेलापति एम : आधुनिक भारत के निर्माता जवाहर लाल नेहरू; 2004, नई दिल्ली, प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृ0 409–15.
12. राव चेलापति एम, पूर्वोक्त, पृ0 408.